COHERENCE – The Multidisciplinary Research Journal
Volume No: 15, Issue No: 2, Year: 2024 (July-December)
PP: 42-47

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

दलित साहित्यकार तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' में अभिव्यक्त लोक–जीवन

जय प्रकाश कुमार
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोध–सारांश :-

इक्कीसवीं सदी को विमर्शों की शताब्दी कहा जाता है। सदियों से हाशिए पर रहे लोगों ने वर्तमान युग में अपनी आवाज को बुलंद करना आरम्भ किया। दरअसल पिछली सदी में ही महान विचारकों और चिंतकों ने दलित वैचारिकी की ठोस पृष्ठभूमि का निर्माण किया उसी पर आज दलित साहित्य की मजबूत इमारत खड़ी हो रही है। जवाहर लाल नेहरू विश्विद्यालय के प्रोफेसर रहे तुलसीराम जी ने अपनी आत्मकथा दो खंडों में लिखी है। पहला खंड 'मुर्दहिया' और दूसरा खंड 'मणिकर्णिका' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। अगर वे कुछ दिन और जीवित रहते तो निश्चित ही उनकी आत्मकथा का तीसरा खंड भी प्रकाशित होता, यह बात उन्होंने स्वयं लिखी है। तुलसीराम जी की विशेषता यह है कि उनकी आत्मकथा में एक तरफ जातीय शोषण का विद्रूप चित्रण है तो दूसरी तरफ ग्रामीण लोक–जीवन के मनोरम दृश्य भी बहुत सुंदरता से उकेरे गए हैं। पीड़ा, व्यथा और दुख के घने अंधकार के बीच लोक–जीवन के अनेक रंग उनकी आत्मकथा में अभिव्यक्त होते हैं। इसी लिए उनकी आत्मकथा अन्य दलित आत्मकथाकारों से थोड़ी अलग और अधिक रोचक है। तुलसीराम के संपूर्ण व्यक्तित्व का अनुशीलन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि गाँव के लोक का उनके जीवन पर गहरा असर रहा है। वे हर क्षण में आनंद ढूंढ लेते हैं। इसी लिए दलितों की विभीषिका का चित्रण करते हुए भी वे कहीं भी निराशावादी नहीं लगते। उनमें आशा की एक किरण है जो उन्हें लोक से प्राप्त हुई है।

बीज–शब्द :- दलित, आत्मकथा, विमर्श, लोक–जीवन, इक्कीसवीं सदी, सवर्ण, विभीषिका

प्रस्तावना :-

अब तक हिंदी में कई दलित आत्मकथाएं प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन 'मुर्दहिया' अन्य दलित आत्मकथाओं से कुछ विशिष्ट है क्योंकि आत्मकथाकार ने इस आत्मकथा में अपने जीवन की विभीषिका के साथ लोक की खूबसूरती को भी जोड़ा है। 'मुर्दहिया' शीर्षक ही बेहद विचारोत्तेजक है। जिस इलाके में लाश फूंकी जाती है उसे मुर्दहिया कहते हैं। जीवन के जितने रंग होते हैं वे सभी मुर्दहिया में विद्यमान हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि उक्त आत्मकथा में तुलसीराम का केवल आरंभिक जीवन ही चित्रित हुआ है। इस दरम्यान गाँव में होने वाला बचपन का प्रेम भी इस बात का प्रमाण है कि जाति–विमर्श के इस दौर में सब कुछ संकुचित नहीं हुआ है। प्रेम उन दीवारों को तोड़ता है, जिसे समाज बहुत मजबूती से खड़ा करने की कोशिश करता है। यही कारण है कि मुर्दहिया में कई ऐसे सवर्ण पात्र भी हैं, जिन्होंने समय–समय पर तुलसीराम को आगे बढ़ाने में बहुत मदद की। मुर्दहिया में तुलसीराम ने उन सभी को श्रद्धापूर्वक याद किया है, यही बातें उन्हें अन्य लेखकों से खास बनाती हैं। उनकी दृष्टि एकांगी नहीं रही है, वे मुर्दहिया में समाज के सभी रंगों को समेट कर चलते नजर आते हैं।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

शोध–विस्तार :-

तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' की भूमिका में लिखा है– "मुर्दहिया हमारे गाँव धरमपुर (आजमगढ़) की बहुउद्देशीय कर्मस्थली थी। चरवाही से लेकर हरवाही तक के सारे रास्ते वहीं से गुजरते थे। इतना ही नहीं, स्कूल हो या दुकान, बाज़ार हो या मंदिर यहाँ तक की मजदूरी के लिए कलकत्ता वाली रेलगाड़ी पकड़ना हो, तो भी मुर्दहिया से ही गुजरना पड़ता था। हमारी दलित बस्ती के अनगिनत दलित हजारों दुःख-दर्द अपने अंदर लिए मुर्दहिया में दफन हो गए थे।"[1] उपर्युक्त पंक्तियों में जीवन के विविध रूप नजर आते हैं। स्वाभाविक रूप से कोई भी हिंदी लेखक श्मशान वगैरह की बात उदासी में लपेट कर करता है लेकिन तुलसीराम जी ने मुर्दहिया जैसी जगह को भी रोचक बना दिया है। लाश दफनाने से लेकर मुर्दहिया को 'बहुउद्देशीय कर्मस्थली' कहना उसकी जीवंतता का परिचायक है। लोक जीवन से तुलसीराम कितने अधिक जुड़े हुए थे इस संदर्भ में उन्होंने स्वयं लिखा है– "जमाना चाहे जो भी हो, मेरे जैसा कोई अदना जब भी पैदा होता है, वह अपने इर्द-गिर्द घूमते लोक-जीवन का हिस्सा बन ही जाता है। यही कारण था कि लोकजीवन हमेशा मेरा पीछा करता रहा। परिणामस्वरूप मेरे घर से भागने के बाद जब मुर्दहिया का प्रथम खण्ड समाप्त हो जाता है तो गाँव के हर किसी के मुख से निकले पहले शब्द से तुकबंदी बनाकर गानेवाले जोगी बाबा, लक्कड़ ध्वनि पर नृत्यकला बिखेरती नटिनिया, गिद्ध प्रेमी पग्गल बाबा तथा सिंघा बजाता बंकिया डोम आदि जैसे जिंदा लोक-पात्र हमेशा के लिए गायब होकर मुझे बड़ा दुख पहुँचाते हैं।"[2] तुलसीराम जी की उक्त पंक्तियां नितांत मार्मिक हैं। जिन दुखदाई परिस्थितियों के बीच उनका आरंभिक जीवन गुजरा था, वहाँ भी उन्होंने आनंद के तत्त्वों को ढूंढ लिया था। उन लोगों के रुखसत होने से तुलसीराम को बहुत पीड़ा होती है। दरअसल इस आत्मकथा में लेखक का जीवन जितना उद्घाटित हुआ है उतना ही उस इलाके की लोक–संस्कृति भी चित्रित हुई है। दलितों का जीवन, उनके अंधविश्वास, भूतों से साक्षात्कार की घटनाएं, सवर्णों द्वारा किया जाने वाले उपहास, लोकगीत, लोक–पूजा आदि का तुलसीराम ने मनमोहक वर्णन किया है। दलितों के जीवन की जो त्रासदी होती है उससे इतर 'मुर्दहिया' में एक स्वप्निल राग है जो अपनी ओर आकर्षित करता है।

'मुर्दहिया' का सबसे मजेदार पहलू यह है कि तुलसीराम अपनी बिरादरी की मूर्खताओं को चित्रित करने में भी नहीं चूके हैं। अन्य दलित लेखक अपनी बिरादरी की कमजोरियों को छिपाने का हरसंभव प्रयास करते नजर आते हैं लेकिन तुलसीराम की प्रवृत्ति वैसी नहीं है। उन्होंने अपनी जाति और अपने पूर्वजों पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है– "मुर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी। मानव जाति का पहला व्यक्ति जो जैविक रूप से मेरा खानदानी पूर्वज था उसके और मेरे बीच न जाने कितने पैदा हुए, किन्तु उनमें से कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था।"[3] उक्त पंक्तियों में लेखक ने कहीं किसी दूसरे पर बेवजह दोषारोपण करने की कोशिश नहीं की है। उन्होंने अपने पूर्वजों की गलतियों को पूरी तरह से स्वीकार किया है, उनकी यही प्रवृत्ति उन्हें अन्य दलित लेखकों से अलग खड़ा करती है।

वस्तुतः तुलसीराम लोक–जीवन से इतने गहरे जुड़े रहे हैं कि उनके भीतर किसी भी वर्ण–वर्ग के लिए कोई भेदभाव लक्षित नहीं होता है। अपनी जाति की कमजोरियों के लिए भी उन्होंने अपने पूर्वजों को ही सबसे अधिक कसूरवार माना है। वे चाहते तो अन्य दलित लेखकों की तरह आसान रास्ता अख्तियार

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

कर के सारे पिछड़ेपन का ठीकरा सवर्णों पर फोड़ सकते थे लेकिन तब उनकी आत्मकथा में लोकजीवन उस तरह नहीं झांकता जैसे वर्तमान में झांकता है।

अंधविश्वास व्यक्ति की जड़ता को और मजबूत आधार देता है। तुलसीराम का पूरा परिवार इसी जड़ता और अंधविश्वास का शिकार था। निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं– "इस भूतही प्रक्रिया ने मेरे खानदान के हर व्यक्ति को घनघोर अंधविश्वास के गर्त में डाल दिया। परिणामस्वरूप घर में भूत बाबा की पूजा शुरू हो गई। घर में ओझाओं का बोलबाला हो गया। किसी को सिर दर्द होते ही ओझेती सोखैती शुरू हो जाती थी। ऐसे भूतहे वातावरण में किसी शिशु का जन्म आजमगढ़ जिले के धरमपुर नामक गाँव में 1 जुलाई, 1949 को हुआ तो उसकी विरासत क्या होगी?"[4] उपर्युक्त पंक्तियों में तुलसीराम जी ने उस परिवेश को पूर्णतया साकार कर दिया है जहाँ उनका जन्म हुआ। यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि 'मुर्दहिया' दलितों के लोक जीवन की सुंदरता का प्रतीक है। अन्य दलित आत्मकथाओं में जहाँ पीड़ा, संत्रास, व्यथा, दुख, शोषण, उत्पीड़न आदि ही आद्योपान्त नजर आते हैं वहीं मुर्दहिया में एक विशिष्ट किस्म की रोचकता और सौंदर्य है। तुलसीराम फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेणी के साहित्यकार कहे जा सकते हैं। जिन्होंने ग्रामीण जीवन के हर रंग को पूरी जीवंतता के साथ चित्रित किया है। वह दलित इलाका जहाँ तुलसीराम जी का बचपन गुजरा वहाँ अनेक उत्सव होते थे। सीमित संसाधनों के बीच वे लोग उन क्षणों का पूर्णतया आनंद लेते थे। तुलसीराम जी ने उन दृश्यों को विशेष रूप से अपनी आत्मकथा में दिखलाया है। चमरिया माई की पूजा, भूत–प्रेत भगाने की प्रक्रिया आदि को तुलसीराम जी ने पूरी तल्लीनता से चित्रित किया है। दलितों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि धन के अभाव में वे इलाज के लिए आज भी डॉक्टरों की तुलना में ओझा–तांत्रिक आदि पर निर्भर रहते हैं। ओझाओं के चक्कर में ही श्यौराज सिंह बेचैन जी के पिता की मृत्यु हो गई थी और तुलसीराम भी मृत्यु के द्वार से लौटे थे। तुलसीराम ने लिखा है– "मेरे ऊपर चेचक का प्रकोप इतना जबरदस्त था कि जीवित रहने की उम्मीद घर वाले लगभग छोड़ चुके थे। उपरोक्त देवी-देवताओं की मनौती के अलावा कोई चिकित्सकीय इलाज़ किसी भी तरह संभव नहीं था, क्योंकि घर वाले घोर अंधविश्वास के कारण दवा लेने से हठ के साथ इनकार कर देते थे। वैसे भी उन दिनों चेचक लाइलाज बीमारी थी। घरवाले इसे शीतला माई का प्रकोप समझते थे। पास के गाँव से एक ओझा आता और कभी भी स्पष्ट न होने वाले कथित मंत्रों को बड़बड़ाते तथा लौंग तोड़ते हुए झाड़-फूंक करता था।"[5] जब अपनी स्मृतियों के सहारे तुलसीराम जी ने इस प्रकरण का वर्णन किया है तब उनमें किसी किस्म के क्षोभ अथवा क्रोध को महसूस नहीं किया जा सकता है। उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया है कि उक्त बीमारी से उनकी जान तो बच गई लेकिन उनकी दाईं आंख की रौशनी समाप्त हो गई। स्वाभाविक है अशिक्षित और अंधविश्वासी समाज में ऐसे लोगों को अपशकुनी के रूप में चिह्नित कर दिया जाता है। इसके बावजूद भी तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा में इसे भी लोकजीवन का हिस्सा माना है। अन्य दलित लेखक अपनी आत्मकथाओं में टकराहट और विद्रोह का स्वर बुलंद करते नजर आते हैं जबकि तुलसीराम की आत्मकथा में आनंद की बसंती बयार बहती नजर आती है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

तुलसीराम स्वयं ग्रामीण लोगों के बीच अपशकुन की श्रेणी में थे लेकिन महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उनके साथ दो अन्य लोग भी थे जो ग्रामीण लोक–जीवन में 'अपशकुनी' कि उपाधि से विभूषित थे। दिलचस्प तथ्य यह है कि वे दोनों ही ब्राह्मण थे। पहले जंगू पांडे और दूसरी पंडिताइन। तुलसीराम अपनी पीड़ा से कहीं अधिक उक्त दोनों ब्राह्मणों की पीड़ा से द्रवित होते नजर आते हैं। निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं– "इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना याद आने पर आज भी दुःख की अनुभूति होती है। मेरे घर के पास एक आम के पेड़ में खूब बौर आए थे। अचानक जंगू पांडे आकर आम के बौरों को देखने लगे क्योंकि बौर बहुत अच्छे लग रहे थे। मेरे घर वालों ने कहना शुरू कर दिया कि जंगू पांडे की नज़र लग गई। अब फल नहीं आएंगे। जबकि बाद में खूब फल आए। इसी तरह गाँव की एक अन्य बुढ़िया ब्राह्मणी थी, जिसका नाम किसी को मालूम नहीं था। वह सिर्फ पंडिताइन के रूप में जानी जाती थी। पंडिताइन निर्वंश विधवा थी। उन्हें भी लोग देखना पसंद नहीं करते थे। गाँव भर के लोगों का कहना था कि पंडिताइन का सामना हो जाने से किसी काम में सफलता नहीं मिलेगी।"[6] लोक–जीवन का विराट रूप उक्त पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है। स्वयं 'अपशकुनी' के तमगे से सुशोभित दलित तुलसीराम का वर्षों बाद भी दो ब्राह्मणों के विषय में सोच कर दुखी होना इस बात का परिचायक है कि लोक–जीवन की जो बसंती छटा है उसका वास्तविक स्वरूप आज भी गाँवों में ही बसता है। जयप्रकाश कर्दम ने मुर्दहिया के संदर्भ में ठीक ही लिखा है– "तुलसीराम की आत्मकथा की पह एक बड़ी विशेषता है कि इसमें केवल आत्मकथाकार का जीवन और उसके निजी अनुभव ही नहीं है, अपितु उसमें लोक साथ-साथ चलता है........ विशेष रूप से मुर्दहिया' में गाँव में रहने वाले अशिक्षित दलित समाज में अज्ञानतावश फैले अंधविश्वासों का प्रचुर मात्रा में चित्रण हुआ है।"[7]

ग्रामीण लोक–जीवन में भूत–प्रेत का अपना महत्त्व है। गाँव के लोग ही, चाहे वे सवर्ण जाति के हों या दलित, मृत व्यक्ति को किस तरह से भूत मान लेते हैं इसे देख कर लेखक भी आश्चर्यचकित हो जाता है। इस विषय पर किसी भी जाति के बीच कोई मतभेद नहीं है। निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं– "उनके पोखरे पर स्थित एक बड़े नीम के पेड़ से कुछ वर्ष पूर्व शुद्ध नामक उन्हीं के गाँव के एक दलित दतुवन तोड़ते हुए गिरकर मर गए थे। अतः हमारे क्षेत्र में उन्हें पोखरे का सबसे खतरनाक भूत घोषित कर दिया गया था। अक्सर लोग निचंट दोपहरी में अकेले पोखरे पर जाने से बहुत डरते थे।"[8] भूत–प्रेत के अलावा टोना–टोटका भी लोक–जीवन का ऐसा तत्व है जिसमें दलितों, अगड़ों और पिछड़ों के बीच कोई भेद नहीं है। अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए उन्होंने लिखा है– "हमारे गाँव की औरतें अक्सर कहा करती थी कि कलकत्ता में बंगाली औरतें बाहरी लोगों को जादू द्वारा वश में करके भेड़ा–बकरा बना कर रख लेती हैं।"[9] वस्तुतः अनेक किस्म के टोटके ग्रामीणों के बीच प्रचलित थे और इन टोटकों के बीच जातियों की कोई दीवार आड़े नहीं आती थी। तुलसीराम ने लिखा है– "उसी समय मेरी माँ को रात में दिखाई देना बहुत कम हो गया। अतः टोटका स्वरूप वह रात के अँधेरे में सरसों के तेल से मिट्टी की ढकनी में कपास की बाती जलाकर यूं ही कुछ ढूंढने निकल पड़ती थी। कौतुहलवश किसी ने पूछ लिया कि क्या ढूंढ रही है, कुछ खो गया है क्या? तो वह तुरंत घर में यह कहते हुए वापस आ जाती थी कि वह 'रतौन्ही' ढूंढ रही थी। रतौन्ही आँख की बीमारी होती थी जिसके चलते रात में दिखाई देना कम हो

© Copyright @ Authors

जाता था। गाँव में सबका विश्वास था कि दीया-बाती जलाकर रतौन्ही ढूंढते हुए किसी के द्वारा टोक दिए जाने से वह टोटका सफल हो जाता है और रोगी को दिखाई देने लगता है। मेरी माँ भी दावा करने लगी कि इसी टोटके से वह ठीक हो गई। मुझे टोटकों के प्रति आशंका तो होती थी, किंतु घोर अंधविश्वासी माहौल में कोई प्रतिरोध नहीं कर पाता था।"[10]

ग्रामीण लोक संस्कृति का वर्णन करते हुए तुलसीराम ने जोगीबाबा के चरित्र का चित्रांकन किया है। उनके समाने कोई भी आता उसके मुंह से जो पहला शब्द निकलता उसी शब्द से वे तत्काल कविता तुकबंदी कर लेते थे। ऐसे अनेक पात्र हर गाँव में होते हैं जो अपनी मस्ती में जीते हैं। ग्रामीण लोक–संस्कृति की सतरंगी छटा तब भी नजर आती है जब भीषण अकाल के बाद सावन में चारों ओर से बादल घिरने लगते हैं। वृष्टि होने के बाद एक बार फिर ग्रामीणों में आशा का संचार होता है। अकाल और भुखमरी को भूल कर लोग फिर से दुगुने उत्साह से खेती–मजदूरी के कार्यों में व्यस्त–मग्न हो जाते हैं। तुलसीराम ने लिखा है– "गाँव के दलित मजदूर और मजदूरिनें लोकगीतों की धुन पर झूल-झूलकर दिन भर काम से मिली थकान को हवा में उड़ाने लगीं। इसी बीच घुमंतू नटों की गाँव के बाहर सिरकिया भी गड़ने लगी। ये सारी बरसाती गतिविधियाँ पिछले दो साल अकाल के दौरान एकदम बंद हो गई थी। किंतु सन् 1959 के बरसाती दिनों में इनकी वापसी से हमारी दलित बस्ती जीवंत हो उठी थी।"[11] तुलसीराम ने लिखा है कि खेतों में काम करते, लोक गीतों को गुनगुनाते किसान और उनकी पत्नियां गंवई भाषा में व्यवस्था पर व्यंग्य भी करते हैं। ग्रामीण लोक कलाओं की ओर भी तुलसीराम की दृष्टि गई है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है– "दीवार पर गेरु तथा हल्दी से जो पेंटिंग की जाती थी, उसे कोहबर कहा जाता था। ऐसी कलाकृतियों में केले का पेड़, हाथी, घोड़े, औरत, धनुष-बाण आदि शामिल हो जाते थे। इन कलाकृतियों को 'कोहबर' लिखना कहा जाता था। चिट्ठी की तरह कोहबर लिखने के लिए भी गाँव वाले मेरी ही तलाश में रहते थे। अतः में जब तक गाँव में रहा, शादी किसी के घर हो, कोहबर मैं ही लिखता रहा। एक विशेष बात यह थी कि इन कोहबर कलाकृतियों का प्रचलन सवर्ण जातियों में नहीं था। इन परम्पराओं से जाहिर होता है कि सदियों से चला आ रहा दलितों का यह बहिष्कृत समुदाय एक अलौकिक कला एवं संगीत का न सिर्फ संरक्षक रहा, बल्कि उसका वाहक भी है।"[12]

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा 'मुर्दहिया' में न केवल दलित जीवन की विभीषिका को उद्घाटित किया है बल्कि लोक–जीवन के सौंदर्य को भी बहुत प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया है। सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि तुलसीराम में किसी भी जाति या समुदाय को ले कर कोई पूर्वाग्रह या द्वेष नहीं है। इसी लिए उन्होंने ग्रामीण समाज को समग्रता से देखने की कोशिश की है। लोक जीवन का सौंदर्य कभी भी केवल एकांगी नहीं हो सकता है यह बात वे भली–भांति जानते हैं, इसी लिए उनकी आत्मकथा दोषारोपण से अधिक आत्म मूल्यांकन करती नजर आती है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 0976-5301
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 7.85)
Journal Website www.coherencejournal.in

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ.–5

2. वही

3. वही, पृ.–9

4. वही, पृ.–10

5. वही, पृ.–11-12

6. वही, पृ.–12-13

7. संपादक– श्रीधर्म, तुलसीराम व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अंतिका प्रकाशन,प्रथम संस्करण 2016, ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.), पृ.–144

8. डॉ. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृ.–94

9. वही, पृ.–109

10. वही, पृ.–112

11. वही, पृ.–103

12. वही, पृ.–105

© Copyright @ Authors